IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

तुलसी काव्य में साहित्यिक अभिप्राय

प्रो0 रश्मि कुमार
हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ
इ–मेल0 rashmiprof121@gmail.com **मो0–9934945339**

संक्षिप्त सारःसत्य तो यह है कि भक्त, दार्शनिक, पण्डित, कवि, नीतिज्ञ, समाज–सुधारक अैर विचारक के रूप में तुलसी का महान व्यक्तित्व सम्पूर्ण वैचारिक धरातल पर छाया हुआ है। तुलसी ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोंण के कारण लोकनायक हैं। इसके साथ–साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि लोकनायकत्व और समन्वयवाद एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है और दूसरे के बिना पहला अधूरा है। कहने का आशय यह है कि लोकनायक ही समन्वयवादी हो सकता है और समन्वयवादी ही लोकनायक होता है। ''तुलसीदासजी समन्वयवादी के साथ–साथ मर्यादावादी भी थे। समन्वय के आवेश में उन्होंने कही भी धर्म के असत् रूप और लोक धर्म की विरोधी प्रवृत्तियों से समझौता नही किया। लोक मर्यादा का उल्लंघन, चाहे वह किसी भी रूप में हो, उनके लिए असह्य था। उनके मतानुसार मर्यादा के बिना अपने सामाजिक कल्याण आकाश–कुसुम के समान है। अपने इस मर्यादावाद से तुलसीदास किसी के सुख को बलात् चोट नहीं पहुंचाना चाहते हैं। उनका मर्यादावाद तो जन–कल्याण के निमित्त था।साहित्य के अभिप्रायपरक अध्ययन का प्रथम प्रयोजन है इस बात की पहचान करना कि रचियता ने जो कुछ लिखा है वह साहित्यरचना की दृष्टि से ही लिखा है या किसी अन्य दृष्टि से। कवि के काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करने के पहले यह सोचा जाना चाहिए कि क्या रचियता की दृष्टि काव्यरचना ही रही है या उससे भिन्न। यदि कवि ने काव्य की ही दृष्टि से काव्यरचना की है तभी उसे काव्य में पाये जानेवाले दोषों और अभावों के लिए उत्तरदायी ठहाराया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

शब्द संकेत : तुलसीदासजी, भक्त, दार्शनिक, पण्डित, कवि, समाज–सुधारक ।

विषय प्रवेशः

तुलसी जैसा श्रेष्ठ –व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष मध्य युग में कदाचित् ही कोई मिलेगा। तुलसीदास ने अपने गहन ज्ञान और व्यक्तित्व के अनुरूप समन्वय किया। उन्होंने लोक और शास्त्र का ही नहीं, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गण और सगुण का, पुराण और काव्य का, पण्डित और अज्ञानी का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, आदर्श और व्यवहार का, प्रवृत्ति का एवं ऊँच और नीच का अपूर्व समन्वय किया। तुलसी ने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को अपनाया और इन सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करके सामाजिक विषमता को दूर किया। सत्य तो यह है कि भक्त, दार्शनिक, पण्डित, कवि, नीतिज्ञ, समाज–सुधारक अैर विचारक के रूप में तुलसी का महान व्यक्तित्व सम्पूर्ण वैचारिक धरातल पर छाया हुआ है। तुलसी ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोंण के कारण लोकनायक हैं। डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो बुद्धदेव के पश्चात् तुलसी को ही लोकनायक घोषित किया है। इसके साथ–साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि लोकनायकत्व और समन्वयवाद एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है और दूसरे के बिना पहला अधूरा है। कहने का आशय यह है कि लोकनायक ही समन्वयवादी हो सकता है और समन्वयवादी ही लोकनायक होता है। ''तुलसीदासजी समन्वयवादी के साथ–साथ मर्यादावादी भी थे। समन्वय के आवेश में उन्होंने कही भी धर्म के असत् रूप और लोक धर्म की विरोधी प्रवृत्तियों से समझौता नही किया। लोक मर्यादा का उल्लंघन, चाहे वह किसी भी रूप में हो, उनके लिए असह्य था। उनके मतानुसार मर्यादा के बिना अपने सामाजिक कल्याण आकाश–कुसुम के समान है। अपने इस मर्यादावाद से तुलसीदास किसी के सुख को बलात् चोट नहीं पहुंचाना चाहते हैं। उनका मर्यादावाद तो जन–कल्याण के निमित्त था।''

साहित्य के अभिप्रायपरक अध्ययन का प्रथम प्रयोजन है इस बात की पहचान करना कि रचियता ने जो कुछ लिखा है वह साहित्यरचना की दृष्टि से ही लिखा है या किसी अन्य दृष्टि से। कवि के काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करने के पहले यह सोचा जाना चाहिए कि क्या रचियता की दृष्टि काव्यरचना ही रही है या उससे भिन्न। यदि कवि ने काव्य की ही दृष्टि से काव्यरचना की है तभी उसे काव्य में पाये जानेवाले दोषों और अभावों के लिए उत्तरदायी ठहाराया जा सकता है, अन्यथा नहीं। यदि कोई शब्दार्थमयी रचना काव्य के विचार से नहीं रची गयी है, तो उसमें काव्यगत वैशिष्ट्य ढूंढना उतना संगत न होगा। ऐसी स्थिति में यदि इस रचना में काव्यतत्त्व का अभाव पाया जाता है और दोषों का बाहुल्य ही मिलता है तो रचयिता उसके उत्तरदायित्व से सर्वथा मुक्त रहता है क्योंकि रचयिता का उद्देश्य काव्यरचना करना न था। हम अपनी इच्छा से ऐसी रचना को काव्य की दृष्टि से भले परख लें और उसके एतत्सम्बन्धी वैशिष्ट्यों और अभावां से परिचित भी हो जायँ, किन्तु रचनाकार पर तभी उसका उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जब उसने काव्यरचना का आग्रह लेकर ही रचना की हो। ऐसी स्थिति हो सकती है कि काव्य का आग्रह न रखते हुए भी कोई शब्दार्थमयी रचना काव्य के तत्त्वों और गुणों से युक्त पायी जाय। हम अपनी निरपेक्ष दृष्टि से उसका मूल्यांकन भी कर सकते हैं, क्योंकि जिस रचना में काव्य के गुणों की अवस्थिति प्रतीत हो रही है उसका साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन कोई अनुचित बात नहीं है। ऐसी रचना का साहित्यिक मूल्यांकन तो अवश्यमेव होना चाहिए, क्योंकि इसके सृजन में काव्यसम्बन्धी रचना का आग्रह विद्यमान रहता है। इस रचना में गुण–दोष जहां भी पाये जायेंगे उनके लिए रचनाकार का उत्तरदायी होना स्वाभाविक ही है। इसलिए साहित्यिक मूल्यांकन की मूल आवश्यकता यह होती है कि इस बात का पता लगाया जाय कि रचनाकार काव्यरचना के आग्रह से युक्त था या नहीं।

साहित्य का अभिप्रायविषयक अध्ययन इस महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करता है। काव्य में साहित्यिक अभिप्रायों की खोज करने से यह बात बहुत सीमा तक स्पष्ट हो जाती है कि रचियता काव्यरचना का आग्रही था या नहीं। इस प्रकार के आग्रह के वास्तविक ज्ञान की अपेक्षा उस साहित्य के संदर्भ में होती है जिसके बारे में कुछ भ्रान्त धारणाएँ पुष्ट और प्रचलित हो जाती हैं और जिनके विषय में प्रायः यह कह दिया

जाता है कि इसके पीछे साहित्यरचना का नहीं, अपितु कोई दूसरा उद्देश्य विद्यमान है। हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य के संबंध में ऐसी ही धारणाएं व्यक्त की जाती रही हैं और अनेक बार यह कहा गया कि इन रचनाओं के पीछे भगवद्भजन का ही उद्देश्य है। गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ भी इसी धारणा से बहुत समय तक ग्रस्त रहीं। आज भी उनके साहित्य के विशुद्ध साहित्यिक मूल्यांकन को धृष्टता की संज्ञा देनेवाले श्रद्धालु पाठकों और विद्वानों की कमी नहीं है। इस बात का सम्यक् परीक्षण अवश्य होना चाहिए कि तुलसी का प्रयोजन मात्र राम की आराधना करना ही था या काव्यरचना करना भी। दूसरे शब्दों में यह विषय विचारणीय है कि तुलसी काव्यरचना के आग्रही थे या नहीं।रचना में निहित साहित्यिक अभिप्रायों के अध्ययन से इसमें काव्यरचना के आग्रह के होने अथवा न होने का पता लगाया जा सकता है। इस आग्रह की जानकारी देनेवाले कई उपाय हो सकते हैं। साहित्यिक अभिप्रायों का अध्ययन उनमें से एक है। काव्य के रूप में अपनी रचना को प्रस्तुत करने का आकांक्षी रचनाकार सहज ही काव्यरचना से पारम्परिक तत्त्वों और विशिष्टताओं को अपनाता है। काव्य के यही पारम्परिक तत्त्व साहित्यिक अभिप्राय है। शब्दार्थमयी रचना में यदि साहित्यिक अभिप्राय पाये जायँ तो रचनाकार का साहित्यिक आग्रह अपने–आप प्रकट हो जाता है।

साहित्य या काव्य के अभिप्रायपरक अध्ययन का दूसरा प्रयोजन है परम्परा की पृष्ठभूमि में कवि के काव्य का अध्ययन करते हुए उसकी निजता ओर मौलिकता से परिचित होना। काव्यरचना में भाव और शिल्प सम्पदा की कुछ भाग तो कवि पूर्ववर्ती काव्यपरम्परा से ग्रहण कर लेता है और कुछ वह निजी चिन्तन से भी काव्य को देता है। साहित्यिक अध्ययन में इस तथ्य का ज्ञान आवश्यक होता है कि किस अंश तक कवि ने परम्परा के रचनाधर्मों को ग्रहण किया है और कितना उसकी मौलिक देन है। कभी–कभी पारम्परिक रचनाधर्मों का विनियोग भी कवि मौलिकता के साथ करता है। साहित्य का न्यायसंगत मूल्यांकन उसमें निहित साहित्यिक अभिप्रायों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किये बिना हो ही नहीं सकता। किसी भी वस्तु को उसकी परम्परा की पृष्ठभूमि में देखना भी आवश्यक होता है। इससे यह पता चलता है कि वह वस्तु परम्परा से कितना ग्रहण कर सकी। उसका उत्कर्ष हुआ या अपकर्ष। पारम्परिक रचनाधर्म को ग्रहण करना भी नितांत सुगम कार्य नहीं है, क्योंकि उसमें नवीन रचनाधर्म का निर्माण भले न करना पड़े, किन्तु उन्हें ग्रहण करने की परिस्थिति की योजना तो करनी ही पड़ती है। साहित्यिक अभिप्रायों का अध्ययन कवि की परम्पराग्राहिता, मौलिकता का काव्य के उत्कर्षोपकर्ष का परिचायक होता है।

कवि के वास्तविक रूप की पहचान साहित्य के अभिप्रायपरक अध्ययन का तीसरा प्रयोजक है। जब विविध रूपों से रचयिता का कविरूप आच्छन्न रहता है, उस समय उसके काव्य में निहित अभिप्रायों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उसका कविरूप ही सर्वप्रधान है, अन्य रूप उसके सहायक हैं। हिन्दी के अनेक कवियों के सम्बन्ध में भ्रामक धारणाओं का विकास हुआ, विशेष रूप से भक्तिकालीन कवियों के सम्बन्ध में। इन कवियों का भक्त, साधक, उपदेशक, दार्शनिक, इतिहासकार रूप ही प्रधान माना जाता रहा, कवि रूप को गौण ही समझा गया। काव्यात्मक अभिप्रायों के अध्ययन से विदित होता है कि कवि के अन्य रूप उसके कविरूप के सहायक ही होते हैं। उसकी भक्ति, साधना, उपदेश, इतिहास, दर्शन आदि से सम्बद्ध तत्त्व काव्य के उपादान बन जाते हैं। मुख्य ध्येय तो काव्यसृजन ही होता है और सर्जक का मुख्य रूप भी कविरूप ही होता है, अन्य कुछ नहीं। साहित्यिक अभिप्रायों का आकलन और साहित्य के संदर्भ में उसकी रचनाशीलता का अध्ययन इस तथ्य का द्योतक है कि कवि अन्य तत्त्वों को काव्य का तत्त्व बनाकर उन्हें ग्रहण कर लेता है। साहित्यिक अभिप्रायों का अध्ययन प्रकारान्तर से रचनाकार के वास्तविक रूप को पहचानने की चेष्टा है।

मध्यकालीन हिन्दी–काव्य जिस युग में रचा गया वह प्राचीन मान्यताओं, धार्मिक एवं पौराणिक विश्वासों एवं जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में परम्परावादी विचारों का युग था। समसामयिक साहित्य पर भी इनका प्रभाव गंभीरता से पड़ा। ऐसी परिस्थितियाँ साहित्यिक अभिप्रायों के विकास के लिए पर्याप्त अनुकूल होती हैं। जीवन में व्याप्त रूढ़ भावना साहित्य में भी अवतरित हुई, परिणामस्वरूप साहित्य में अभिप्रायों का प्राचुर्य दिखाई पड़ने लगा। साहित्यिक अभिप्रायों की इतनी अधिकता मध्यकालीन काव्य में रही कि उनका समग्र आकलन भी सहज संभव नहीं। इस काल के काव्य में साहित्यिक अभिप्राय काव्य–रूढ़ियों के स्तर तक विकसित दिखायी देते हैं।

साहित्यिक अभिप्रायों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होने पर एक प्रधान समस्या यह सामने आती है कि साहित्यिक अभिप्राय के समग्र रूप की अवधारणा को किन–किन वर्गों के अन्तर्गत रखा जाय। साहित्यिक अभिप्राय के समग्र रूप का बोध पहले नहीं किया जा सका था। स्फुट रूप से ही शास्त्राकारों तथा अध्येताओं ने इसका परिचय दिया है। अभिप्राय का रूढ़ अर्थ कथात्मक रूढ़ि या कथाभिप्राय है, इसलिए यह तो साहित्यिक अभिप्राय का प्रमुख अंग है ही; किन्तु इसके अतिरिक्त भी साहित्यिक अभिप्राय के कुछ क्षेत्र हैं। पौराणिक रूढ़ियों (मिथकों) का भी अपना विशेष क्षेत्रा है जिसकी रूढ़ मान्यताएँ काव्यरचना के सहायक उपादान का काम देती रही हैं। ये काव्य के विषय से यद्यपि भिन्न हैं, परंतु भक्तिकालीन काव्य के सम्बन्ध में इनका विशेष महत्त्व है और तुलसी के काव्य के संदर्भ में और भी। काव्यरूपविधान भी साहित्यसृजन का एक विशिष्ट आयाम है। इसमें भी अभिप्रायों की प्रेरणा आरंभ से सक्रिय है। काव्यरूप जहाँ शास्त्रसम्मत है, वहां शास्त्रीय लक्षणों ने अभिप्राय के रूप में उसे चिरस्थायी बनाया है तथा जहां उसका स्वरूप शास्त्रमुक्त अथवा स्वतंत्र विकसित है वहां भी वह अभिप्रायों से प्रेरित है। स्थूल रूप से तो साहित्यिक अभिप्राय के यही क्षेत्र प्रमुख हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य काव्यांगों की योजना में भी अभिप्रायतत्त्व प्रच्छन्न रूप से घुले–मिले रहते हैं ; जैसे–रस–योजना, अलंकार–विधान, छन्दविधान, भाषा आदि में। इन काव्यांगों में अभिप्रायों का अपेक्षाकृत सूक्ष्म रूप विद्यमान है, जिसका अध्ययन महत्वपूर्ण और रोचक है। काव्य में अभिप्रायों के यही मुख्य क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में छोटे–छोटे अनगिनत अभिप्राय काम करते हैं। साहित्यिक अभिप्राय के व्यवस्थित अध्ययन की सुविधा के लिए तथा इन अनगिनत छोटे–छोटे अभिप्रायों को समेटने के लिए तथाकथित क्षेत्रों के आधार पर ही साहित्यिक अभिप्रायों का वर्ग–विभाजन किया जा सकता है। साहित्यिक अभिप्रायों के वर्ग–विभाजन में हम इन्हीं क्षेत्राों का आधार ग्रहण करेंगे।

तुलसी की रचनाओं में साहित्यिक अभिप्राय की व्यापक सम्भावनाएं हैं। मध्यकाल में साहित्यिक अभिप्राय की जिन संभावानाओं तथा अनुकूल परिस्थितियों का उल्लेख हम कर चुके हैं, उनका गंभीर प्रभाव तुलसी की रचनाओं पर पड़ा है। फलस्वरूप तुलसी–साहित्य अभिप्रायों की प्रचुरता है। इस प्रचुरता के दो मुख्य आधार हैं–प्रथम कवि की वह प्रवृत्ति जो स्वतंत्रगामिनी कम है, परम्परानुगामिनी अधिक तथा द्वितीय युगीन काव्यधारा, जिसने तुलसी की रचनाओं पर अपना प्रभाव डालकर साहित्यिक अभिप्रायों की मात्राा में वृद्धि की है। तुलसी वेद–पुराणादि के प्रति आस्थावान् थे। उनके स्वभाव में धार्मिक भावना की प्रधानता थी, इसलिए पौराणिक अभिप्राय उनकी रचनाओं में बहुत आ गये हैं। तुलसी अपने काव्य को लोक–जीवन के समीप ले आना चाहते थे, इसका प्रभाव कथा–विषयक अभिप्रायों की मात्रा पर पड़ा है। इसके अतिरिक्त काव्यरूप, वर्णनपद्धति और अन्य काव्यांगों को परम्परापोषित रूप में अपनाने की धारणा तो काव्य की समसामयिक प्रवृति का अंग थी ही। इन्हीं कारणों से तुलसी–साहित्य में साहित्यिक अभिप्राय की व्यापक संभावनाएं एकत्र हो गयीं। ये साहित्यिक अभिप्राय तुलसी की साहित्यरचना के सुदृढ़ आधार बने हुए हैं। इनकी व्याप्ति और रचनात्मक को समझे बिना तुलसी के काव्य के संबंध में कोई स्वस्थ धारणा बना सकना कठिन हो गया है।रामचरितमानस और कवितावली में युद्धों के अनेक प्रसंग हैं। ऐसे युद्ध राम और राक्षसों के बीच ही अधिक हुए हैं, जिसमें भीषण रक्तपात के ऐसे दृश्य दिखाये गये हैं और उसके सम्बल पर वीभत्स रस की योजना की गयी है। रामचरितमानस के लंकाकाण्ड से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

बीर परहिं जनु तीर तरू मज्जा बहु बह फेन।
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं।।
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं।
भूत पिसाच वधू नभ नंचहिं।। रा0 6187–88

इस तरह के कई उदाहण तुलसी–साहित्य में मिलते हैं।

सीता का सौन्दर्यबोध तुलसी ने दो स्थानों पर मिथकों के सहारे करने की कोशिश की है। ये दोनों प्रसंग रामचरितमानस और गीतावली में हैं। रामचरितमानस में सीता–सौन्दर्य–निरूपण में काम को श्रृंगाररूपी मन्दराचल के द्वारा शोभारूपी रज्जु से छवि–सुधा पयोनिधि का मंथन करते हुए दिखाया गया हैं–

जौं छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई।।
सोभा रजु मंदरू सिंगारू।
मथे पानि पंकज निज मारू।
एहि बिधि उपजै लच्छि जब संदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत सम कहहिं सीय समय तूल।। रा0 11247

उक्त प्रसंग का मिथकतत्व कला और कल्पना से मंडित है। समुद्र–मंथन के पुराणप्रसिद्ध कार्य–व्यापार की आधारभूमि पर कामदेव के पौराणिक व्यक्तित्व को क्रियाशील कल्पित किया गया है और कवि सीता के अतिशय रूप–सौन्दर्य की अनुभूति कराने में सफल हुआ है। गीतावली में भी सीता की सौन्दर्यानुभूति कराने के प्रयोजन से तुलसी ने कामदेव को दुग्ध–दोहन और दुग्ध–मंथन की विचित्र क्रिया में दत्तचित्त दिखाया गया है। वास्तव में अपनी कवि प्रतिभा से तुलसी ने पौराणिकता और काव्यकला को एकाकार कर दिया है। कविता में रचनात्मक उद्देश्यों द्वारा मिथकों का विलय कर दिया गया है।

तुलसी–साहित्य के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक अभिप्रायों का अध्ययन औचित्यपूर्ण ही नहीं परमावश्यक भी है। तुलसी की रचनाओं में भक्तिभावना का रंग इतना प्रगाढ़ है कि उन्हें भक्त और उनकी रचनाओं को धार्मिक ग्रन्थ समझ लेने में भारत–जैसे धर्मप्राण देश के पाठकों को तनिक भी असंगति का अनुभव नहीं होता। संपूर्ण भक्तिकाव्य के साथ यही कठिनाई है, उसमें भी उन रचनाकारों के साथ विशेष है जो श्रेष्ठ हैं तथा जिन्होंने अधिक मात्रा में साहित्य लिखा है। ऐसे रचनाकारों में सूर और तुलसी अग्रगण्य हैं। तुलसी भक्त हैं, उन्होंने अपने आराध्य राम के प्रति भक्तिभाव का निवेदन किया है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ; परंतु साहित्यिक अध्ययन की समस्या इससे हल नहीं होती। इसके लिए अन्य सभी अवरोधों को हटाकर उनके साहित्यिक रूप को शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखना होगा। यद्यपि अनेक शोध और समीक्षाग्रन्थों के माध्यम से तुलसी–साहित्य का साहित्यिक अध्ययन किया जा चुका है, परंतु उसमें जितना काव्यानन्द है, उस तक अभी पहुंचा नहीं जा सका है। साहित्यिक अभिप्रायों के अध्ययन के अभाव में न जाने कितने ऐसे रहस्य अब तक नहीं खुल सके, जो तुलसी की काव्यचेतना से घनिष्ठता से संबंधित हैं। तुलसी –साहित्य में निहित साहित्यिक अभिप्रयों के अध्ययन के औचित्य के संबंध में इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

लोकनायक तुलसीदास के साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् यही कहा जा सकता है कि उन्होंने मानव की समस्त बातों को अपने काव्य में समन्वय कर दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि उनका साहित्य 'सत्यं शिवं और सुन्दरम्' की सफल अभिव्यक्ति है। तुलसीदास ने अपने समय की समस्त दशाओं का बड़ा गहन अध्ययन करके अपने साहित्य के माध्यम से समाधान प्रस्तुत किये। कवित्व की दृष्टि से तुलसी की प्रांजलता, माधुर्य और ओज, अनुपम कथा, मानव–जीवन का सर्वांग निरूपण अप्रतिम हुआ है। मर्यादा ओर संयम की साधना में गोस्वामीजी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। 'रामचरितमानस' में मर्यादावाद की जैसी सुन्दर पुष्टि गुरू की अवहेलना के लिए शिष्य को दण्डित कराने हेतु की है, राम–राज्य का वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रखा है, उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगों में गोस्वामी जी की मानव–समाज के प्रति हित–कामना स्पष्टतः झलकती देखी जाती है। उनके अमर–काव्य 'रामचरितमानस' में मानवता के चिरन्तन आदर्श भरे पड़े है ं।

साहित्यिक सर्वेक्षणः

अभिप्राय संबंधी अध्ययन की दृष्टि से भारतीय अध्येताओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहला है संस्कृत और हिन्दी के काव्यशास्त्रियों का वर्ग, जिन्होंने अभिप्राय के कुछ विशिष्ट पक्षों, जैसे–कवि–प्रसिद्धि, कवि–शिक्षा आदि के शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। रस, अलंकार आदि अनेक काव्यांगों में निहित रूढ़ तत्त्वों का भी अनुशीलन इन काव्याचार्यों ने समय–समय पर किया है। यद्यपि ये समस्त आयाम साहित्यिक अभिप्राय के ही अन्तर्गत आयेंगे पर इन काव्यशास्त्रियों ने इसे अभिप्राय न कहकर स्वतंत्र विषय के रूप में ही प्रस्तुत किया है। इनके विवेचन में यह सब काव्यशास्त्र के ग्रंथों की अंग बना हुआ है।

कविसमय पर राजशेखर ने सर्वप्रथम विस्तार के साथ अपनी पुस्तक 'काव्य–मीमांसा' में लिखा है। इसके अतिरिक्त इसकी संक्षिप्त चर्चा विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में की है। हिन्दी के रीतिवादी आचार्यों ने कहीं गुण और कहीं दोष के अन्तर्गत इसे सम्मिलित किया है। आधुनिक युग के अनुशीलकों ने इस पर गंभीर दृष्टि डाली। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने काशी विद्यापीठ की शोधपत्रिका में 'कविसमय' पर विस्तृत लेख लिखा है। श्री दिवाकर मणि त्रिपाठी ने 'कविपरिपाटी' नामक पुस्तक लिखी जिसमें 'कवियों के देश में' शीर्षक अनुच्छेद कविसमयों पर ही है। अपनी 'कविरहस्य'नामक पुस्तक में डॉ0 गंगानाथ झा ने कविसमयों की व्याख्या की है। पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ में भी कविसमय पर बाबू गुलाबराय का एक लेख है। इन सभी कार्यों का मूल आधार काव्यमीमांसा में किया गया कविसमयों का विश्लेषण ही है। हिन्दी में कविसमय के मौलिक एवं वैज्ञानिक अध्येता डॉ0 विष्णुस्वरूप हैं जिन्होंने 'कविसमयमीमांसा' नामक शोध प्रबन्ध लिखा है।

गोस्वामी तुलसीदास रचित साहित्य पर 19वीं एवं 20वीं सदी में कई बहुमूल्य कार्य हुए हैं, जिसमें तुलसी दास की रचनाओं में निहित विभिन्न तथ्यों को रेखांकित किया गया है। पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के तहत विभिन्न आचार्यों द्वारा संपादित कार्यों का अवलोकन किया गया है। जिसमें रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित– तुलसी–ग्रन्थावली भाग 2, डॉ0 उदयभानु सिंह द्वारा रचित–तुलसी–काव्य–मीमांसा, डॉ0 विमलकुमार जैन द्वारा रचित–तुलसीदास और उनका साहित्य , डॉ0 कृष्णदेव उपाध्यय द्वारा रचित–लोक–साहित्य की भूमिका , डॉ0 सियाराम तिवारी द्वारा रचित– हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य , डॉ0 गणपतिचन्द गुप्त द्वारा रचित–हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य रचना शैली एवं परम्पराओं पर व्यापक चर्चा है। उपर्युक्त पुस्तकों में गोस्वामी तुलसीदास–साहित्य से संबन्धित विभिन्न तथ्यों का अवलोकन प्रस्तुत किया गया है ।

उद्देश्य :

वर्तमान परिवेश में प्रायः लोगों की प्रवृत्ति जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा आदि के प्रति संकीर्ण होती जा रही है, परिणामतः समाज में संकीर्णता, कट्टरता, आतंक व हिंसा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। इस सन्दर्भ में यदि विश्व के प्रमुख धर्मों के मूल ग्रन्थों के साहित्यिक अभिप्राय का अनुशीलन किया जाय तो ज्ञात होगा कि उन सबमें उच्च आदर्श तथा नैतिक कर्त्तव्यों की ही स्थापना की गयी है। साहित्यिक अभिप्राय की दृष्टि से तुलसी साहित्य का अत्यन्त महत्व है और उनके द्वारा उपदेशित मूल्य अत्यन्त प्रासंगिक भी है। प्रस्तुत आलेख में तुलसी साहित्य में निहित साहित्यिक अभिप्राय को रेखांकित किया गया है।

अध्ययन पद्धति :

यह आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषण पर आधारित है । साथ ही ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति के आधार पर विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों एवं पुस्तकालयों से तथ्यों का संकलन किया गया है । वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर ही आधारित है।

निष्कर्ष:

तुलसी के समस्त साहित्य का अध्ययन करन` के पश्चात् विचारक कहते हैं कि विश्व में जितने भी मानव हैं उनकी जितनी संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ हैं, उन सबका सुन्दर समन्वय एकमात्र हिन्दुओं का ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है जिसमें सब कुछ अध्ययन किया जा सकता है। डा0 उदयभानु सिंह का कहना है –''तुलसी–साहित्य में पाँच भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण है–देव, दानव, नर, वानर और किन्नर, उनकी अपनी संस्कृति है।'' इनके अतिरिक्त तुलसी ने हिन्दू संस्कृति क` साथ मुस्लिम संस्कृति का समन्वय भी स्थापित किया है। तुलसी की समस्त जीवन–साधना समन्वय की चेष्टा है। वे सब कुछ ग्रहण करके उसे नवीन और उपयोगी रूप दने के पक्षपाती हैं। मर्यादा और संयम की साधना में गोस्वामी जी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। एक फ्रेंच आलोचक ने श्रेष्ठ कवि के तीन गुण बताये हैं–समन्वय, अनुमति की सत्यता और स्पष्टता। इन तीनों गुणों का समन्वय प्रचुर मात्रा में गोस्वमी तुलसीदास जी के काव्य से प्राप्त होता है। राम–काव्यधारा और कृष्ण–काव्यधारा में समन्वय –तुलसीदास के साहित्य में एक नहीं, अनेक वस्तुएँ ऐसी अद्भ्ुत मिलती हैं, जिनकी समन्वय करके उन्होंने संसार का बड़ा उपकार किया है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि तुलसी स्वयं राम–काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि थे, फिर भी कृष्ण के चरित्र का वर्णन लेकर उन्होंने' श्रीकृष्ण गीतावली' की रचना की है। उपसंहार – संक्षेप में तुलसी का समस्त जीवन और काव्य समन्वय का ही रूप है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कह सकते हैं– '' उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कला और तत्व–ज्ञान का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय .रामचरितमानस' प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समन्वय का काव्य है।

संदर्भ–स्रोत :

1. रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास(2004) तुलसी–ग्रन्थावली भाग 2, सं0 काशी नगरी प्रचारिणी सभा:,वाराणसी।
2. डॉ0 उदयभानु सिंह (1966) तुलसी–काव्य–मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
3. डॉ0 विमलकुमार जैन(2014) तुलसीदास और उनका साहित्यः, साहित्य सदन, देहरादून।
4. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्यय,(1970) लोक–साहित्य की भूमिका : साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद।
5. डॉ0 सियाराम तिवारी(1964) हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्यः, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।
6. डॉ0 गणपतिचन्द गुप्त, (1965) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहासः, भारतेन्दु भवन, चंडीगढ़।

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation